International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 3,Issue 5,May 2015 **ISSN: 2320-2882(online)**

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor:-0.345(GIF)
www.ijcrt.net

यम एवं नियम ही जीवन का आधार

राहुल पचौरी
सहायक चिकित्सक योग एवंप्राकृतिक चिकित्सा
प्राचार्य योग एवं नेचुरोपेथीमहाविद्यालय भोपाल

वर्तमान में इस व्याधि से ग्रसित मानव समाज योगांगों का अनुसरण कर इस व्याधि से मुक्त हो सकता है। क्योंकि इस रोग के लिये जितना जिम्मेदार आहार है शारीरिक व मानसिक अवस्थायें भी कम जिम्मेदार नहीं है। जब तक शारीरिक व मानसिक सुचिता पर हम ध्यान नहीं देगें तब तक इस व्याधि से निजात पाना असंभव है। हमें अपनी मानसिक स्थिति को संतुलन में लाना होगा तदुपरांत ही शारीरिक स्थिति की दशा बदलेगी। मानसिक स्थिति परिवर्तन हेतु योग में यम का सहारा लेना होगा। यम के पांचों उपांगों को अपनाना होगा। अहिंसा इसका प्रथम उपांग है।

यम :– अहिंसा : किसी जीव को कष्ट न पहुंचाना यह अहिंसा का प्रकट अर्थ जाना जाता है। जबकि अहिंसा का धर्म को धारण करने में प्रमुख स्थान है। अहिंसा निषेधात्मक है परंतु उसका विधेयात्मक पक्ष – करूणा, सेवा, सहायता, दया आदि के रूप में उदित होता है। इसमें कर्म प्रधान है करने से ही पुण्य की प्राप्ति होती है। लेकिन न करने पर भावना मात्र से एक कल्पनाकार के मन पर छाई रहती है। उसे यदि प्रकट होने का अवसर प्रदान न हो तब मात्र संवेदना में औचित्य का समावेश रहते हुए भी उसका प्रत्यक्ष परिणाम प्राप्त न हो सकेगा। प्राचीन काल में स्थूल अहिंसा का पालन तो पेड़–पौधो पहाड़–पर्वत भी करते थे। उन्होनें कभी किसी को कष्ट नहीं पहुंचाया लेकिन यह उनकी जड़ता जन्म व्यवस्था थी लेकिन हम उन्हे अहिंसक नहीं कह सकते। जो भावना सचेतन में रहती है वह उनमें नहीं पाई जाती। जिन जीवों का आहार ही हिंसात्मक है उनके ऊपर अहिंसा का भाव लागू नहीं किया जा सकता। सिंह को अगर आप पालकर भी रखे फिर भी उसका आहार हिंसात्मक ही है। ऐसे हिंसकर जीवों पर अहिंसा का प्रभाव कुछ समय के लिये स्नेहयुक्त वातावरण विखेर कर प्रमाणित किया जा सकता है लेकिन हमेशा के लिये नहीं क्योंकि विवेक का अभाव है। मनुष्य ही एक ऐसा विवेकशील प्राणी है। जिसे उचित अनुचित का बोध रहता है और वह भावनाशील भी है इसलिये उसके लिये यह नियम है कि वह दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा स्वयं के लिये चाहता है। इसलिये अपने लिये अहित न चाहने वाले किसी अन्य के साथ अहित नहीं करते। अहिंसा इस दृष्टि में आत्म रक्षा की ढाल सिद्ध होती है। अहिंसा का सृजनात्मक पक्ष है– आत्मीयता और जहां आत्मीयता है वहां दया, करूणा का सद्भाव और ममता का व्यवहार ही मान्य है। अहिंसा में कष्ट नहीं उद्देश्य व औचित्य मुख्य है। अहिंसा में विवेक साथ में रहना आवश्यक है हिंसा वहां होती है जहां अपने संकीर्ण स्वार्थ सिद्धि के लिये अनीति पूर्वक दूसरों को कष्ट पहुंचाया जाये जिनसे निर्दोषों को उत्पीड़न सहना पड़े। हिंसा शारीरिक आघात तक ही सीमित नहीं है उसका मानसिक आघात भी एक पक्ष है:– अपमान, तिरस्कार, दुर्व्यहार भी हिंसा का एक रूप है। जिससे मान सम्मान को आघात लगे उसे भी हिंसा ही कहा जायेगा। हिंसा का तात्पर्य है अन्याय पूर्वक उत्पीड़न। मात्र शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुंचाना हिंसा नहीं है। कुकर्मियों, ह्रदयहीनों, दुराचारियों को सुधारने के लिये जो विवेक पूर्ण हिंसा प्रयुक्त की जाती है उसे भी अहिंसा ही कहना चाहिये। अहिंसात्मक भाव को धारण करने से मानव का मस्तिष्क चैतन्यता में वृद्धि करता है और शरीर

ग्रंथियां भी अपना स्त्राव सामान्य अवस्था में करके लाभ पहुंचाती है। मानसिक स्थिति से ही शारीरिक स्थिति प्रभावित होती है। चिंता, क्रोध, मानसिक आशांति को जन्म देता है। जिसके कारण पाचक स्त्रावों में असमानता आने के कारण पाचन क्रिया सामान्य नहीं हो पाती साथ ही कब्ज आदि व्याधियों का जन्म होता है। शोक व भय की मानसिक अवस्था से भी पाचन प्रणाली में असमानता आ जाती है और कब्ज का उदय हो जाता है।

सत्य :— सत्य को धर्मशास्त्रों में धर्म का मूल बताया गया है। सत्य मात्र की साधना से असंख्य मानसिक क्लेशों का शमन हो जाता है और इसके विपरीत अवस्था में चलने से मानसिक क्लेश ग्लानि और आलस्य, अकर्मण्यता का उदय होता है। सत्य का सामान्य अर्थ मुखारविन्द के उच्चारित शब्दों में सच की भावना निहित हो ऐसा माना जाता है लेकिन सत्य का तात्पर्य तथ्य से है। यह कृत्य मात्र वाणी से संपन्न नहीं हो जाता वरन वचन के द्वारा उसका उपचार ही बन जाता है। यह दार्शनिक प्रक्रिया है। इसमें प्रचलनों व परंपराओं से ऊपर उठकर यथार्थता की गहराई तक पहुंचना पड़ता है। इसमें प्रचलनों व परंपराओं से ऊपर उठकर यथार्थता की गहराई तक पहुंचना पड़ता है। साधारण अवस्था में हम जो देखते है और जो सुनते है उसी के अनुरूप मन बनाकर आचरण करने लगते है इसमें अन्वेषण की आवश्यकता नहीं समझते कि जो अपनापन आ रहा है वह वास्तविक है या है भी नहीं उसका प्रतिफल वैसा हो सकता है या नहीं जैसा चाहा गया है। पूर्ण सत्य की साधना आत्मशोधन का विषय है क्योंकि हमारे जीवन के गुण, चिंतन, स्वभाव तथा चरित्र व्यवहार के सभी पक्ष भ्रांतियों और अवास्तविकताओं के आधार पर अवलंबित हो गये है क्योंकि उनमें तथ्यों का कम, अंध परंपराओं का भाग अधिक है क्योंकि मनुष्य अनादिकाल से मन, बुद्धि की सीमित अवस्था से काम चला रहा है। वास्तविक अवास्तविक का वर्गीकरण, विश्लेषण कर सकने की बुद्धि का विकास एक छोटे परिणाम में ही विकसित हो पाया था। सत्य बोलना अच्छी बात है इससे अंर्तद्वंद नहीं उठता प्रमाणिकता भी बढ़ती है। असत्य के आचरण से आंतरिक कुंठा का भावहीन भावना का आंतरिक बोध, पश्चाताप आदि से आंतरिक अशांति के उदय से आंतरिक ग्रंथियों विष वमन करती है। जिसका प्रभाव आहार प्रणाली पर पड़कर मन पर पड़ता है और आंतो की संकुचन व प्रसारण क्रिया में अंतर पाकर आहार का अपशिष्ट पदार्थ को आगे धकेलने की शक्तित का आंतों की मांसपेशियों में ह्रास हो जाता है और कब्ज व्याधि स्थापित करती है। असत्य आवरण को अपनाने से स्वभावतः मुंह सूखता है। लार ग्रंथियों अपना स्त्राव नहीं करती और आमाशय की स्वाभाविक क्रिया में अंतर आकर यकृत तथा पित्ताशय व अग्नाशक अपना स्वाभाविक कार्य नहीं कर पाते इससे पाचन प्रभावित होता है। साथ ही मल त्याग के समय भी अशांति का अनुभव होता है जिसके कारण मलावरोध की स्थिति पैदा हो जाती है।

अस्तेय :— यम का तीसरा उपांग है। इसका शाब्दिक अर्थ है चोरी न करना किन्तु हमारे धर्मशास्त्रों में जिस अस्तेय को प्रमुखता दी गई है उसमें बिना परिश्रम के धनोपार्जन तथा थोड़े श्रम के बदले बहुत लाभ उठाने की नियति प्रमुख है। व्यावसायियों में तथा आलसी व्यक्तियों में इस प्रवृत्ति की अधिकता रहती है। व्यक्ति को बेबकूफ बनाकर पैसा लेना इनमें वकील व चिकित्सक आते है। वहीं सरकारी उचित कार्य करने में लोग व्यवधान डालकर अनुचित तरीके से धन की मांग करते है। यह आदत भी इस अंग का उल्लघंन है। आर्थिक उपराधी की मानसिक स्थिति भययुक्त रहती है। इस चोरी की आदत का मुख्य आशय लोभ व लालच है और ये पतन की ओर तो ले ही जाते है बल्कि आहार के पाचन में बाधा उत्पन्न करते है। परिणाम स्वरूप आंत की आंतरिक पेशियां संकुचन और प्रसारण की सामान्य क्षमता खो देती है। इस कारण भी कब्ज व्याधि का जन्म होता है। साथ ही लोभ को पाप कार्य का मूल भी कहा गया है। साथ ही अपराधी को हर समय चिंता भी सताती है। समाज के चहुंमुखी प्रगति का आधार बहुमुखी सहयोग से लाभांवित होता है। समाज के प्रगति के कार्यो की

उपेक्षा करना कर्तव्य कर्म की चोरी है। चोरी किसी भी स्तर की हो उससे बचना भी अस्तेय है। असत्य का उल्लंघन कब्ज की उत्पत्ति में सहायक है।

ब्रह्मचर्य :—जिसका शाब्दिक अर्थ है आहार से निर्मित सप्तधातु की अंतिम धातु शुक्र को व्यय न कर धारण करना और यह तभी संभव होगा जब हम सभी को अपना समझे। अपना समझने में अनीति नहीं होती भले ही लिंग भेद क्यों न हो। क्योंकि हम जब एक ही परिवार में विभिन्न आयु वर्ग के स्त्री—पुरूष, युवक—युवती रहते है पर उनमें एक दूसरे के प्रति सम्मान के अलावा दुराभाव या अनैतिक आचरण का लैश मात्र शरीरिक व मानसिक अंतर नहीं आता और जहां पराया भाव जाग्रत हुआ वहीं पवित्रता की दीवार ढह जाती है और आयु भेद का चिंतन उभरते ही अनाचार का भाव उठने लगता है। अनाचार और दुराभाव से अपवित्रता आ जाती है जिस कारण आहार का पाचन व्यवस्थित नहीं हो पाता और सप्तधातुओं के निर्माण में व्यवधान उत्पन्न होकर मल बड़ी आंत्र में जाकर रूक जाता है। यह स्थिति शारीरिक व मानसिक रूपो से सृजित होती है और यह सृजन शारीरिक व मानसिक विक्षेप उत्पन्न करेगा तथा आधि—व्याधियों का जन्म होगा। मानसिक रूप से व्यभिचारी और शारीरिक व्यभिचारी उन सभी लाभो से वंचित रहते है जो ब्रह्मचर्य में बताये जाते है साथी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करने वाले व्यक्ति मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकारों की कब्ज की गिरफ्त में होते है। कामुक चिंतन कब्ज के लिये विशेष उत्तरादायी है। प्रवाह क्रम प्रकृति का नियम है और यहीं निरोगी जीवन का सच्च अर्थ है। अन्न के उत्पादन से लेकर भोजन के माध्यम से पाचन प्रणाली से गुजरते हुए मल रूप में बाहर हो जाना, अगर इस गति में अपरोध होता है तो व्याधि का उदय होगा ही यही कब्ज है।

अपरिग्रह :— सम्पन्नता और विपन्नता में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता है। कभी आवेश में आकर अनीति भी होती है। इस संग्रह की प्रवृत्ति में ईर्ष्या के साथ द्वेष भी जुड़ा है। एक का संग्रह दूसरे की असुविधा व दरिद्रता का कारण बनता है और जहां अनीति, संग्रह, ईर्ष्या, द्वेष आदि का समागम हुआ और प्रवाह क्रम का अवरूद्ध हुआ तो यही पीड़ा कब्ज व्याधि है। अस्तु अपरिग्रह की भावना को हमेशा आचरण में लाना ही श्रेयष्कर है।

नियम

शौच :— मलीनता का जमते रहना प्रकृति क्रम है। त्वचा से पसीना, आंख से मैल, मुख से गंदी वायु, कान से मोम, दांतो से मैल, तथा मूत्र व मल के रूप में गंदगी के विसर्जन की निरतंरता से बाह्म व आंतरिक सुंदरता व शुचिता बनी रहती है और इनके अवरोध से ही व्याधि के उदय की कहानी प्रारंभ होती है। मलीनता कहीं भी अच्छी नहीं होती। इसलिए शारीरिक अंगों की नित्य प्रति सफाई होनी चाहिए। इस कार्य में नागा नहीं होना चाहिए। क्योंकि गंदगी की सहोदर बहनों में प्रथम व्याधि ही है। जहां तक इस कब्ज व्याधि की उत्पत्ति का प्रश्न है। हम योगांग के द्वितीय सोपान नियम के प्रथम उपांग पवित्रता पर दृष्टिपात करते है तब ऐसा लगता है कि मलिनता चाहे शारीरिक हो या मानसिक दोनो से ही इस व्याधि के सृजन की कथा प्रारंभ होती है। आलस्य और प्रमाद इसके प्रथम लक्षण है। गंदगी शुचिता दोनों ही आवश्यक है। मलीनता या अपवित्रता गुण कर्म स्वभाव मं निकृष्टता का समावेश होने से बढ़ती है। लालची, लोभी, अहंकारी आदि स्वार्थपूर्ति के लिये छल प्रपंच का मिथ्या सहारा लेते है जिससे कलह, परिवार में कोहराम, घुटन, विषैला चिंतन से उत्पन्न अवसाद के कारण अन्न का पाचन न होने एवं समय से मल विसर्जन नहीं होने से अपच और कब्ज रोग उत्पन्न होता है। इस व्याधि से निजात के लिये शुचिता की आवश्यकता है। आहार की शुचिता के साथ विचारों की भी शुचिता होना चाहिये इस व्याधि उत्पत्ति की गंदगी

आदृश्य रहती है मात्र अनुभव व लक्षणों के माध्यम से समझने के साथ ही कुछ समय व्यतीत होने पर व्यवहारिकता में आती है।

संतोष :—योग चिकित्सक शास्त्र में असंतोषी के बराबर किसी अन्य को दरिद्री नहीं बताया गया है तथा असंतोषी को विभिन्न व्याधियों से ग्रसित बताया गया है। इस स्थिति का निर्माण मन के आवेशों से होता है। संतोष को सभी सुखों की खान माना जाता है। संतोष से अभिप्राय संतुलन से है। मनुष्य की वास्तविक आवश्यकता संतुलित है। खाना, वस्त्र, निवास ये कठिन नहीं है। कर्तव्य की उपेक्षा और अधिकार की प्रबलता होने पर सर्वत्र कलह मचता है। वैसे सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाने पर संतोष बना रह सकता है। संतोषी बनने का अर्थ अनुत्पादक या आलसी बनना नहीं हे पुरूषार्थ तो हर क्षेत्र में किया जाना चाहिये। आत्मिक भूख जब विकृत होती हे तब वह तृष्णा, वासना, अहंता, ममता आदि के रूप में फूटती है और बैचेनी आ जाती है। लालसा व्यक्ति को असंतोषी बनाती है। आलस्य और प्रमाद का सीधा प्रभाव पाचन क्रिया पर पड़ता है और वह विकृत हो जाती है और कब्ज की उत्पत्ति होती है आवश्यकता एवं भोग में संुतुलन की स्थिति अपनाकर सदा सुखी रहकर इस व्याधि से बचा जा सकता है।

तप :—तप साधना का परम पुरूषार्थ है। इससे शरीर को शोधित कर व्याधियों से मुक्त रह सकते है। लेकिन उसके लिये सहना पड़ेगा। योगांगों की कुंजल क्रिया व शंख प्रक्षालन तथा बस्ति के माध्यम से यदि आहार प्रणाली का शोधन कर लिया जाये तब आहार अपनी अवस्था व सयम के अनुसार ही आगे बढ़ेगा तथा सप्त धातुओं का निर्माण कर मल पदार्थ के रूप में शरीर से बाहर निकल जायेगा। तक का परिणाम लेखमात्र भी शंका युक्त नहीं है। तप का परिणाम हमेशा सकारात्मक आता है। योग साधना के तप से शरीर में सोई शक्तियां जागृत होती है। कष्ट—सहिष्णुता का अभ्यास जब किसी महान उद्देश्य से किया जाता है तो उसे ही तपस्या कहते है निरोगता और दीर्घ जीवन की कुंजी श्रमशीलता के साथ जुड़ी हुई है। संयम और साधना के लिये प्रयत्नशील रहकर निरोगी रहा जा सकता है क्योंकि बिना तप के व्याधियां चहुं ओर से घेर लेती है।

स्वाध्याय :— स्वाध्याय से सब कुछ ठीक हो जाता है। इसमें प्रमाद न करें। स्वयं के अंतःकरण का अध्ययन करें और रोग रूपी अवरोध को हटाकर निरोगी जीवन जिये। मन, वचन और शरीर में पवित्रता धारण करें। ऐसा माना गया है कि मन की पवित्रता के लिये स्वाध्याय, वचन की पवित्रता के लिये सत्य और शरीर की पवित्रता के लिये शौच बताया गया है स्वास्थ्य में आत्मसत्ता और उसकी महत्ता का बोध होता है जिससे कर्तव्य पथ की जानकारी एवं प्रेरणा मिलती है। साथ ही स्वयं के लिये नुकसान देय तथा फलदायी अवस्था वस्तु विचार, व्यवहार क्या है इसकी जानकारी अर्जित कर सपरिणाम, अवस्था विचार व्यवहार का अनुसरण कर जीवन पर्यन्त निरोगी रहना ही स्वाध्याय का मूल मंत्र है।

ईश्वर प्रणिधान :— मन—वचन व कर्म से परमात्का को समर्पित होकर शांति और सुखमय जीवन यापन करना चाहिये बिन विश्वास न कबनेहु सिद्धि कहा गया है। परमात्मा से मिलन का सबसे उत्तम उपाय प्रार्थना है। स्मरण है क्योंकि सृष्टि में कर्मफल व्यवस्था है। अज्ञानता के कारण वह दूर प्रतीत होता है। विवेक उभरने पर वह अति समीप दृष्टिगोचर होने लगता है। ईश्वर प्रणिधान से अशांत मन शांत हो जाता है। परिणामतः वह सुख का भागी बनता है।

संदर्भग्रंथ :—

1. पंतजलि योग दर्शन नंदलाल दशोरा रणधीर प्रकाशन हरिद्वारा

2. पंतजलि योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर
3. पतंजलि योग सूत्र वेदानंद सरस्वती योग विद्यालय मुगेर बिहार
4. धेरण्य संहिता स्वमी निरजंनानंद योग पब्लिकेशन ट्रष्ट बिहार स्कूल ऑफ योग मुगेंर।